इकाई 26 नृजातीयता तथा राष्ट्र-राज्य

संरचना

26.1 प्रस्तावना

26.2 नृजातीयता तथा राष्ट्र-राज्य : अवधारणा

26.3 नृजातीयता अध्ययन हेतु दृष्टिकोण

26.4 नृजातीयता का आविर्भाव

26.5 राज्य की प्रतिक्रिया

26.6 भारत में नृजातीयता के मुख्य मामले

- 26.6.1 उत्तर-पूर्वी भारत
- 26.6.2 तमिलनाडु
- 26.6.3 पंजाब
- 26.6.4 जम्मू व कश्मीर

26.7 साराश

26.8 अभ्यास प्रश्न

26.1 प्रस्तावना

भारत औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् तीसरी दुनिया के अन्य किसी देश की ही भाँति राष्ट्र-निर्माण की परिकल्पना में लगा था। उस वक्त देश के नेताओं का मानना था कि समाज के सम्पूर्ण विकास की लक्ष्यप्राप्ति का एकमात्र रास्ता देश में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था कायम करना ही है जो कि धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता व समाजवाद के उन सिद्धांतों पर आधारित हो जिसकी देश के संविधान में गारण्टी दी गई है। इन सिद्धान्तों की निष्पत्ति हेतु राज्य ने विकास का नेहरूवियन अथवा महालेनोबिस मॉडल सामने रखा। परन्तु लोकतन्त्र व विकास की लक्ष्यप्राप्ति हेतु मुख्य उद्देश्य के साथ राष्ट्र-निर्माण की परिकल्पना को देश की नृजातीय विविधताओं के बीच ही पूरा करना पड़ा। जातीय, धार्मिक व जनजाजीय समूहों से परे, भारत में विविधताएँ संस्कृति, भाषाओं व क्षेत्रीय विकास के शब्दों में व्यक्त थीं। देश में विकास व इतिहासों के विभिन्न स्तरों, विभिन्न धर्मों तथा सांस्कृतिक समूहों ने राष्ट्र-निर्माण के सामने एक प्रत्यक्ष चुनौती खड़ी कर दी। इसके अलावा, उत्तर-पूर्व, तमिलनाडु, पंजाब तथा जम्मू व कश्मीर की अन्तरराष्ट्रीय सीमाओं पर युद्धनीतिक स्थिति ने राष्ट्र-निर्माण का कार्य और अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया। देश विभाजनोपरान्त साम्प्रदायिक सर्वनाश की ताजा स्मृतियों के साथ, राष्ट्र-निर्माण का लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के नेताओं की सर्वोच्च प्राथमिकता थी। उस समय यह माना जाता था कि लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था और सम्पूर्ण विकास की स्थापना होने के बाद भारत में नृजातीयता अथवा विविधताएँ राष्ट्र-निर्माण में कोई समस्या खड़ी नहीं करेंगी। राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में नृजातीयता को पीछे धकेल दिया जाएगा।

जबकि स्वतन्त्रता उपरांत प्रथम दो दशकों में भारत का एक राष्ट्र-राज्य के रूप में निर्माण करने की दिशा में प्रयास मूल रूप से आधुनिकीकरण अथवा विकासात्मक/पाश्चात्यमक मॉडल पर आधारित था, 1980 के दशक व उसके बाद से भाजपा तथा उसके मित्रवत संगठनों के नेतृत्व वाले देश में हिन्दू दक्षिणपंथी ताकतें भारत की छवि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धांतो पर आधारित एक राष्ट्र-राज्य, अथवा एक हिन्दू राज्य के रूप में बनाने

का प्रयास कर रही हैं। नेहरूवियन अथवा विकासात्मक मॉडल के आलोचक व इस प्रकार की समझ वाले उन्हें हटा देने पर आमादा हैं जिन्हें वे राज्य की नीतियों में विकृतियाँ मानते हैं। खान-पान की आदतों, धार्मिक प्राथमिकताओं के संबंध में विधान बनाने हेतु उनके प्रयास हिन्दू धर्म/संस्कृति/आस्था को प्राथमिकता दिए जाने का संकेत है। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र को ऐसा हिन्दू राष्ट्र-राज्य माना जाता है जहाँ अन्य धर्मों, आस्थाओं की स्थिति द्वितीयक होती है। यह बात राष्ट्र-राज्य को दो तरीकों से चुनौती देती है – एक, यह उन दूसरी आस्थाओं के अस्तित्व को मान्यता नहीं देती है जो इससे असहमत हैं, और हिन्दू वर्ण-व्यवस्था पर आधारित सामाजिक पदानुक्रम को वैधता प्रदान करती है; दूसरे इसकी प्रतिक्रिया में, धार्मिक व जातीय विचारों पर आधारित नृजातीय समूहों का संघटन होता रहा है। यह बात धर्म परिवर्तन, जातीय दंगों, तथा एक वैकल्पिक विचारधारा की तलाश के रूप में साम्प्रदायिक संघर्षों, आतंकवाद, निम्न जातियों के विरोध-प्रदर्शन में परिणत हुई है जो सामाजिक परिवर्तन को प्रकट करती है। द्रविड़ आन्दोलन का उदय भी हिन्दू राष्ट्रवाद के खिलाफ एक प्रतिक्रिया ही था, जैसा की दक्षिण भारत की द्रविड़ियन पार्टियों द्वारा माना जाता है।

26.2 नृजातीयता तथा राष्ट्र-राज्य: अवधारणा

सामान्यत: नृजातीयता को उन लोगों के एक समूह का संघटन माना जाता है जो संस्कृति, भाषा, धर्म, इतिहास आदि के लिहाज से सर्वमान्य सहज गुण रखते हैं, और जो ऐसे किसी अन्य समूह से भिन्न होते हैं जो अपने अलग सर्वमान्य सहज गुण रखते हैं। यह संघटन एकल अथवा अधिक सहज गुणों पर हो सकता है। उदाहरण के लिए, भाषा धर्म (भारतीय संदर्भ मे सम्प्रदायवाद के रूप में प्रसिद्ध) जाति अथवा जनजाति के आधार पर लामबन्दी को नृजातीय लामबन्दी माना जाता है। ऐसे उदाहरणों में से एक हैं -पॉल आर. ब्रास, जो नृजातीय लामबन्दी तथा साम्प्रदायिक लामबन्दी को अदल-बदल कर प्रयोग करते हैं। दीपांकर गुप्ता नृजातीय तथा सम्प्रदायवाद के बीच भेद करते हैं। उनका तर्क है कि नृजातीयता अनिवार्य रूप से राष्ट्र-राज्य – राज्यक्षेत्र व संप्रभुता, के संदर्भ में किसी समूह के संघटन को किसी अन्य के साथ संबंध में इंगित करती है। एक नृजातीय समूह स्वयं को किसी राष्ट्र के राज्यक्षेत्र में आस्था का सच्चा अनुयायी होने की घोषणा करता है अथवा एक संप्रभू राज्य स्थापित करना चाहता है अथवा किन्हीं अन्य समूहों की निष्ठादारी पर संदेह करता है। ऐसे राष्ट्र-राज्य के सहज गुणों का उल्लेख प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हो सकता है। उनके विचार से वह सामूहिक संघटन जिसका उल्लेख राष्ट्र-राज्य – राज्यक्षेत्र अथवा संप्रभुता के रूप में नहीं होता है, नृजातीय संघटन नहीं है। यह मात्र साम्प्रदायिक लामबन्दी है, राष्ट्र-राज्य के प्रति किसी समूह की निष्ठा पर संदेह अथवा उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। सम्प्रदायवाद में यह सरकार ही है जो सन्दर्भ बिन्दु होती है; सरकार पर ही साम्प्रदायिक समूहों के प्रति भेदभाव बरतने अथवा उनका समर्थन करने का दोष लगता है। देश व काल के बदलते प्रसंग में सम्प्रदायवाद नृजातीयता में अथवा नृजातीयता सम्प्रदायवाद में परिवर्तित हो सकती है।

कोई भी राष्ट्र-राज्य एक संप्रभु भौगोलिक सत्ता होता है जिसके आधार-स्तंभ होते हैं– इतिहास, संस्कृति, भाषा, धर्म अथवा सभ्यता पर आधारित एक समुदाय के सहभागित मनोभाव। परन्तु कुछ विद्वजन भारत को एक राष्ट्र-राज्य नहीं मानते हैं। उनका तर्क है कि किसी राष्ट्र-राज्य की नींव का आधार एकल राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता होता है; इस प्रकार के समाज में लोग एक ही सर्वमान्य भाषा, संस्कृति अथवा धर्म भी अपनाते हैं। चूँकि भारत में बड़ी संख्या में ऐसी राष्ट्रीयताएँ हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलती हैं, भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक सहज गुण, इतिहास, धर्म आदि रखती हैं; वह एक बहुराष्ट्रीय राज्य होता है, न कि कोई राष्ट्र-राज्य। बहरहाल, सामान्यत: भारतीय संदर्भ में राष्ट्र-राज्य, राष्ट्र अथवा बहुराष्ट्रीय राज्य जैसे शब्दों का प्रयोग अदल-बदलकर किया जाता है।

26.3 नृजातीयता अध्ययन हेतु संदर्भ

एक क्षेत्र विशेष की सीमाओं में रहकर संस्कृति, भाषा, धर्मों के सर्वमान्य सहजगुणों को अपना कर अथवा विभिन्न क्षेत्रों से बाहर रहकर भी ये लोग एक समूह-नृजातीय समूह जो कि ऐसे समूहों से भिन्न होते है, कैसे बना लेते हैं? उस प्रश्न के उत्तर में मूल रूप से तीन पहलू हैं: आदिम, यंत्रवादी, तथा वह पहलू जो आदिम व यंत्रवादी, दोनों की विशेषताओं को संमिश्रित करता है। आदिम धारणा के अनुसार लोगों के बीच नृजातीय भेद "प्रदत्त" हैं; वे उन्हें विरासत में मिलते हैं। यह भेद समूहों के बीच नृजातीय संघर्ष का रूप ले लेने की ओर उन्मुख होते हैं। यंत्रवादी धारणा के पक्षधर मानते हैं कि नृजातीय भेद "प्रदत्त" नहीं होते ; वे संभ्रांतों द्वारा पैदा किए जाते हैं, जो कि राजनीतिज्ञ, अध्यापक, धार्मिक नेता आदि हो सकते हैं। परवर्ती अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु सामाजिक दरारों अथवा भेदों का छलयोजन करते हैं। सामाजिक दरारें जो अपने भेदों के बावजूद समरसता रखकर कर साथ-निभा रही होंगी, संभ्रांतों द्वारा नृजातीय भेदों में व्यक्त कर दी जाती हैं।

विशेष प्रसंगों में ये नृजातीय भेद नृजातीय संघर्षों, दंगों, स्वायत्त आन्दोलनों अथवा विद्रोह के भी रूप में पराकाष्ठा पर पहुँचते हैं। वे मूल सामाजिक दरारें जो नृजातीय समूहों में बदल दी जाती हैं, हमेशा असली नहीं होतीं। इनमें से कुछ तो संभ्रांतों द्वारा "ईजाद" अथवा "निर्मित" भी होती हैं। तीसरी धारणा में मानना है कि ये दोनों पहलू – आदिम तथा यंत्रवादी, दोनों नृजातीयता के विषय को स्पष्ट करने में असमर्थ हैं। वे इस विषय को "द्वि-ध्रुवीयता" में बाँटते हैं। यह इन दोनों ही धारणाओं के सम्मिश्रण की वकालत करती है। इसके पक्षधरों का तर्क है कि आदिम धारणा यह स्पष्ट नहीं करती कि लोग सर्वमान्यता को निभाते-निभाते नृजातीय समूहों में कैसे संक्रमित हो जाते हैं। इसी प्रकार, यंत्रवादी धारणा यह स्पष्ट नहीं करती कि सर्वमान्य सहज गुणों को अपनाने वाले लोग उस संभ्रांत वर्ग के आह्वान का क्यों प्रत्युत्तर देते हैं, जो उन्हें नृजातीय समूहों में छलयोजित करते हैं।

26.4 नृजातीयता का आविर्भाव

इस मान्यता पर शीघ्र ही बहस छिड़ गई थी कि क्या नृजातीयता उस विकास को देखते ही पीछे जा छुपेगी जो कि महालैनोबिस मॉडल – राष्ट्र-राज्य निर्माण प्रक्रिया को आगे बढ़ाए, के परिणामस्वरूप होगा। इससे काफी पहले कि मॉडल के परिणाम सामने आते, उस वादे पर जिस पर यह आधारित था, संदेह किया जाने लगा। अनेक तर्क प्रस्तुत किए गए : इस प्रकार के राष्ट्र-निर्माण के मॉडल ने देश में अपेक्षाकृत छोटी राष्ट्रीयताओं को उपेक्षित किया है। यह उन पर अधिरोपण है। उनकी पहचानों, संस्कृतियों, इतिहासों तथा आकांक्षाओं की उपेक्षा की गई है। राष्ट्र-राज्य निर्माण का यह मॉडल उनके हितों के नितान्त विरुद्ध है। इस पहलू के पक्षधरों ने राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन किया। उत्तर-पूर्व में नागाओं के विद्रोह से शुरू हुआ यह विरोध दक्षिण में तमिलनाडु, तथा उत्तर में पंजाब, जम्मू व कश्मीर तक फैल गया। तभी से जाति, धर्म, भाषा, जनजातियों, आदि के नाम पर देश के प्रायः सभी भागों में राष्ट्र-निर्माण को नृजातीय चुनौती का सिलसिला चला।

जबकि एकमात्र सहजगुण नृजातीय पहचान बनाने में सर्वाधिक स्पष्ट संकेत हो सकता था, यह एक से अधिक संमिश्रण रहा जिसने वास्तव में इसके लिए आधार प्रदान किया। इसी प्रकार, हिन्दू दक्षिणपंथी ताकतों को चुनौती थी। इसके आलोचकों का तर्क है कि भारत कोई राष्ट्र-राज्य नहीं है। यह एक बहु-राष्ट्रीय राज्य है। पॉल आर. ब्रास ने वस्तुतः यह तर्क दिया कि यद्यपि व्यवहारतः राष्ट्रीय स्तर के भारतीय नीति-निर्माताओं ने महालैनोबिस मॉडल का अनुसरण किया, उन्होंने सिद्धान्ततः बहुवादी लक्षणों – देश की नीतियों के हिसाब से उसके भिन्न-भिन्न भाषायी, धार्मिक व अन्य अल्प-संख्यकों, को स्वीकार किया था। इस प्रकार का बहुवाद सिर्फ

राष्ट्रीय स्तर की नीतियों में अपनाया गया। परन्तु राज्य सरकारों ने अक्सर अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभावपूर्ण व स्वांगीकरक नीतियाँ ही अपनाईं। यह दर्शाना कि भारत एक राष्ट्र-राज्य है, देश में बहुवाद तथा विविधताओं के अस्तित्व को वस्तुत: ठुकराया जाना है।

राष्ट्र-निर्माण/राष्ट्र-राज्य के प्रति नृजातीय चुनौती ने भारत में निम्न रूप धारण कर लिए :

1) स्वायत्तता आन्दोलन

2) पृथक् राष्ट्र की माँग

3) विद्रोह

4) पहचान चिह्नों – जनजाति, जाति, भाषा, धर्म आदि के आधार पर संघर्ष तथा उपद्रव।

नृजातीय आविर्भाव के प्रथम तीन रूपों को स्व-निर्धारण आन्दोलन भी कहा जाता है। यह गौरतलब है कि आविर्भाव के ये तीनों ही रूप देश में कोई एकसमान एक समान घटनाक्रम नहीं अपनाते हैं। यह एक किसी रूप में शुरू होकर विभिन्न परिस्थितियों में कोई अन्य रूप ले सकता है। 1950 के दशकोपरांत से इन पर आधारित संघर्ष देश के विभन्न क्षेत्रों में आम रहे हैं। दरअसल, सालिग एस. हैरिसन ने देश में हुए भाषायी अथवा साम्प्रदायिक संघर्षों के प्रसंग में स्वतंत्रता पश्चात् प्रथम दो दशकों को "सर्वाधिक भयावह दशकों" की संज्ञा दी है। बहुधा राज्यों में ऐसे संघर्षों की जड़ें स्थानीय परिस्थितियों में ही जमी थीं।

राज्यों के भाषायी पुनर्गठन ने कुछ सर्वमान्य भाषायी विशेषमताओं के आधार पर राज्य बना दिए। परन्तु देश के अनेक भागों में धर्म, मूल-प्रवासी द्विभाजन, भाषिका/भाषाई विवाद के आधार पर संघर्षों का सिलसिला चलता रहा। राज्यों के भीतर स्वायत्तता के लिए तथा देश के कुछ हिस्सों को अलग कर सम्प्रभु राज्यों की माँग उठने लगी। ये अक्सर हिंसा में ही परिणत हुए। जबकि स्वायत्तता आन्दोलनों, विद्रोह तथा पृथकतावादी आन्दोलनों के मामले में पक्षपोषकों का मुख्य लक्ष्य केन्द्रीय सरकार के नाम से विशेषत: पहचाने जाने वाली राज्य एजेंसियाँ ही होती हैं, प्राय: इनमें किसी क्षेत्र में विभिन्न सम्प्रदायों के बीच नृजातीय संघर्ष अथवा उपद्रव भी शामिल होते हैं। परन्तु यदि ये भाषा, धर्म, जातियों, जनजातीय पहचान के आधार पर कोई संघर्ष/दंगा है तो मुख्यत: विभिन्न समूहों के बीच होता है। ऐसे मामलों में राज्य एजेंसियों को एक सम्प्रदाय विशेष की पक्षपाती अथवा दूसरे के विरुद्ध वस्तुत: वैसा ही माना जा सकता है। विद्वानों ने, तथापि, गौर किया है कि भारत में पृथक्तावादी प्रवृत्तियाँ राष्ट्रवादी मनोभावों के साथ ही विद्यमान हैं।

26.5 राज्य की प्रतिक्रिया

राज्य की प्रतिक्रिया राजनीतिक परिस्थितियों के प्रसंग पर ही निर्भर होती है। भारत में नृजातीय आविर्भाव की ओर राज्य की प्रतिक्रिया के सामान्य प्रतिरूपों में शामिल हैं – अवपीड़न, समंजन, नृजातीय आन्दोलन के भीतर फूट डालना, आन्दोलन के नेतृत्व के एक वर्ग विशेष कि अपतुष्टि व उसको संरक्षण, आदि। पॉल आर. ब्रास का तर्क है कि 1950 व 1960 के दशक में केन्द्रीय सरकार ने नृजातीय संघर्षों, आदि की ओर अलिखित नियमों का पालन किया था – धार्मिक सम्प्रदायों की राजनीतिक मान्यता हेतु माँग पर विचार न करना ; भाषायी, क्षेत्रीय अथवा अन्य सांस्कृतिक रूप से परिभाषित समूहों की माँग पर कोई रियायत नहीं; और संघर्ष में सांस्कृतिक समूहों को कोई रियायत नहीं जब तक कि दोनों पक्ष इसका ठोस रूप से समर्थन न करें। उदाहरण के लिए, एक पृथक् हिन्दी भाषी क्षेत्र के लिए हरियाणा के नेताओं द्वारा जब तक एक पंजाबी सूबे हेतु माँग को भी समर्थन नहीं मिल गया, पंजाबी सूबा – पंजाब राज्य नहीं बनाया गया।

26.6 भारत में नृजातीयता के मुख्य मामले

भारत के विभिन्न क्षेत्रों नृजातीय आविर्भाव के अनेक उदाहरण हैं। इस पाठांश में कुछ सर्वाधिक प्रमुख उदाहरणों पर चर्चा की गई है।

26.6.1 उत्तर-पूर्वी भारत

अपने विशिष्ट इतिहासों, भौगोलिक स्थिति तथा विविध नृजातीयता संयोजन के साथ उत्तर-पूर्वी भारत के लगभग सभी राज्य नृजातीयता की समस्याओं से घिरे हैं। उन सभी ने स्वातंत्र्योत्तर काल में समय-समय पर घटती बढ़ती प्रचण्डता के साथ विद्रोह, नृजातीय संघर्षों व दंगों तथा स्वायत्तता आन्दोलनों को देखा है। सामान्यत: उन्होंने हिंसात्मक रूप लिया है। जबकि, चूँकि विद्रोह के तत्त्व लगभग सभी राज्यों में विद्मान हैं, नागालैण्ड तथा मिज़ोरम में विद्रोह ने सर्वाधिक तीक्ष्ण रूप लिया। उत्तर-पूर्वी भारत के लगभग सभी राज्यों में ऐसी ताकतें हैं जो मानती हैं कि वे भारतीय नहीं हैं; उनके राज्यक्षेत्र बिना उनकी सहमति के बलपूर्वक भारत में विलय कर लिए गए हैं। वे अपने स्वयं सर्वसत्ताक राष्ट्र-राज्यों को लेना पसंद करते हैं। नागालैण्ड में विद्रोही समूहों ने, उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान, उत्तर-पूर्व के हितार्थ उसके अनुसूची-VI को स्वीकार नहीं किया; देश में 1952 में कराए गए पहले आम चुनाव का बहिष्कार किया; और निर्वासन में अपना स्वयं सर्वसत्ताक राज्य – फेडेरल रिपब्लिक ऑव नागालैण्ड, स्थापित कर लेने की घोषणा कर दी। पिछले दो दशकों में, इस राज्य के लगभग सभी राज्यों में नए विद्रोही समूह उभरे हैं। बाहरी देशों, खासकर सीमा से लगे पड़ोसियों के समर्थन से, इन्होंने एन.एस.सी.एन.(नैशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑव नागालैण्ड) के नेतृत्व में एक संरक्षा संगठन बना लिया है। वे भारतीय राज्य की संप्रभुता और राष्ट्र-राज्य की संकल्पना पर संदेह करते हैं। 1960 के दशक में असम के खासी, जैनतिया तथा गारो निवास क्षेत्रों में एक स्वायत्त राज्य हेतु आन्दोलन देखा गया था जो 1972 में एक पृथक् मेघालय राज्य के निर्माण में परिणत हुआ। असम में फिर बोडोलैण्ड तथा कर्बी आंग्लोंग, आदि जैसे स्वायत्तता राज्यों के निर्माण हेतु आन्दोलन हो रहे हैं। विद्रोह में लक्ष्य होता है राज्य की स्वायत्तता – पुलिस, सेना व अन्य संस्थाएँ; स्वायत्त आन्दोलन राज्य की स्वायत्तता पर संदेह नहीं करते हैं, बल्कि उनका आक्रमण भी राज्य एजेंसियों के विरुद्ध दिशा में होता है। विद्रोह तथा स्वायत्त आन्दोलन अकसर नृजातीय दंगों में परिणत होते हैं, खासकर जनजातियों व ग़ैर-जनजातियों के बीच अथवा एक या दूसरी जनजाति के बीच अथवा एक या दूसरी जनजाति के बीच। ये सभी घटनाक्रम अन्ततोगत्वा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के संबंध में राज्य-नीतियों से जुड़ जाते हैं।

ऐसे मुख्यत: दो पहलू हैं जो उत्तर-पूर्वी भारत के प्रसंग में नृजातीयता तथा राष्ट्र निर्माण के विषय का विश्लेषण करते हैं। पहला है आधुनिकीकरण – विकास – "राष्ट्र-राज्य निर्माण" का पहलू। दूसरा है "संघ-निर्माण" का पहलू। पूर्ववर्ती पहलू समस्याओं को निम्नलिखित के परिणमस्वरूप मानता है : आधुनिक तथा पारम्परिक के बीच संघर्ष के चलते राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया; आधुनिकीकरण तथा परिवर्तन (लोकतंत्रीकरण) की प्रक्रिया; आधुनिक तथा पारम्परिक नेतृत्व के बीच संघर्ष; और नई पीढ़ी की आकांक्षाएँ पूरी करने में प्रणाली की अक्षमता। इस पहलू का प्रयोग करने वाले विद्वानों में हैं – एस.के. चौबे, वी.बी. सिंह, बी.जी. वर्घीस, मायरन वीनर तथा हिरेन बुहेन। दूसरा पहलू मूलत: पहले वाले की समीक्षा है। यह पहलू सामान्यत: उन विद्वानों के लेखों में उपलब्ध है जो उत्तर-पूर्वी क्षेत्र से ही उभरे हैं। इस पहलू के प्रमुख प्रतिनिधि हैं संजीव बरुआ, सजल नाग, उपेन शर्मा, हिरेन गुहेन, संजय हजारिका तथा बेज़बरुआ। दरअसल उर्मिला फड़निस का मत है कि सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में मुख्य नेतृत्व ने प्रबल समूहों के विचारों की धारणा को अपनाया और समाज के अल्पसंख्यक संघटकों की उपेक्षा की। इस पहलू के पक्षधर विद्वानों का तर्क कि उत्तर-पूर्व में समस्याएँ मुख्यधारा राष्ट्रीय स्तर के नेतृत्व के "राष्ट्र-राज्य निर्माण" पहलू का ही परिणाम है। वह आगे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि "राष्ट्र-राज्य निर्माण" की उनकी खोज में केन्द्रीय सरकार और मुख्यधारा नेताओं के प्रतिनिधित्व वाले देश

के प्रबल समूहों ने "बाह्य रेखा" उत्तर-पूर्व की लघु राष्ट्रीयताओं की उपेक्षा की; उनके साथ "सौतेला व्यवहार" किया; अक्खड़ रवैया दिखाया; और देश के अन्य भागों की अपेक्षा उत्तर-पूर्व में मानवाधिकार उल्लंघन के प्रति कम ध्यान दिया। यही कारक उत्तर-पूर्व में विप्लव समस्या में परिणत हुआ। यह पहलू संजीव बरुआ के इस सुझाव में भलीभाँति सुव्यक्त है कि इस परिस्थिति से उबरने के लिए देश की मुख्यधारा नेतृत्व को अपनी "राष्ट्र-राज्य निर्माण" धारणा के स्थान पर "असली राज्यसंघ-निर्माण" का पक्ष लेना चाहिए।

26.6.2 तमिलनाडु

एक राष्ट्र-राज्य के रूप में भारत की इच्छा के विरुद्ध सर्वाधिक तीक्ष्ण विरोध औपनिवेशिक शासन से देश आज़ाद होने से काफ़ी पहले दक्षिण भारत में हुआ था। तमिलनाडु के द्रविड़ियन आन्दोलन इस क्षेत्र में इसी आशय का प्रतिनिधि बन गया। आत्म-सम्मान आन्दोलन के रूप में जन्म ले कर और बाद में जस्टिस पार्टी, डी.के. तथा डी.एम.के. के रूप उभर कर आने वाले द्रविड़ियन राष्ट्रवाद ने तीन आधारों पर देश में व्याप्त राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र-राज्य की इच्छा पर प्रश्न किए – धर्म, भाषा, तथा जाति। द्रविड़ियन राष्ट्रवाद के अग्रणी व 'पेरियर' के नाम से प्रसिद्ध, ई.वी. रामास्वामी नैयर का तर्क था कि भारत में प्रबल राष्ट्रवाद कांग्रेस द्वारा व्यक्त किया गया था जो हिन्दू धर्म अथवा ब्राह्मणवाद, हिन्दी भाषा तथा उच्च जातियों, खासकर ब्राह्मणवाद पर आधारित था। यह अनार्य द्रविड़ियन, तमिल भाषा तथा निम्न जातियों पर आधारित द्रविड़ियन राष्ट्रवाद के प्रति विरोधात्मक था। उत्तर भारतीय उच्च जातीय राष्ट्रवाद के प्रभुत्व स्थापन से द्रविड़ियन पहचान तथा राष्ट्रवाद की रक्षा करना आवश्यक था। राष्ट्रवाद के ये दोनों रूप एक साथ रह सकते थे। पृथक् कर दिए जाने की माँग, हिन्दी-विरोध आन्दोलन तथा बाद में और अधिक स्वायत्ता हेतु माँग दक्षिण भारत में राष्ट्र को नृजातीयता की चुनौती के अभिप्रायों के उदाहरण थे।

येरियर से मिली विरासत को सी.एम. अन्नादुरई तथा एम. करुणानिधि द्वारा आगे बढ़ाया गया। अन्नादुरई वैसे, परियर से असहमत थे। जबकि येरियर निम्न जातियों की दुर्दशा के लिए केवल ब्राह्मणवाद को जिम्मेदार मानते थे, अन्नादुरई ने कहा – ऐसा औपनिवेशिक नीतियों के कारण भी था कि उत्तर भारतीय उच्च जाति तथा कांग्रेस का प्रभुत्व द्रविड़ों के ऊपर थोपा गया। अन्नादुरई के अनुसार, दो दमनकर्ताओं – उपनिवेशवाद तथा उत्तर-भारतीय ब्राह्मणों व बनियों से द्रविड़ों को मुक्त कराने का रास्ता भारत से अलग हो जाना तथा स्वतंत्र द्रविड़नाडु बना लेना था। उनका दावा था कि एक स्वतंत्र, लोकतांत्रिक भारतीय गणराज्य संबंध-विच्छेद हेतु उनकी माँग का समर्थन करेगा। नरेन्द्र सुब्रह्मण्यम मानते हैं कि द्रविड़ियन पार्टियाँ ही एक भारतीय राज्य में कांग्रेस के आधिपत्य को चुनौती देने में अग्रणी थीं। द्रविड़ियन नृजातीय अभिकथन की देश में अन्य पृथक्तावादी आन्दोलनों के साथ तुलना करने पर, वह पाते हैं कि यह स्वभावत: कम हिंसात्मक था। यह मूलत: एक विचारात्मक आन्दोलन था। साठ के दशक में डी.एम.के. कांग्रेस के एक विकल्प के रूप में उभरी, जिसने 1967 में सत्ता हासिल कर ली। तभी से तमिलनाडु में सत्ता सहयोगी दलों की मदद से डी.एम.के. और ए.आई. डी.एम.के. के पास ही रही है।

पृथक्करण की इस माँग ने हालाँकि नागालैंड अथवा जम्मू व कश्मीर की भाँति जन-समर्थन नहीं जुटाया। न ही उसने हिंसा का वह स्तर ही अपनाया। पृथक्तावाद की माँग आगे चलकर द्रविड़ियन पार्टियों द्वारा छोड़ दी गई। परन्तु उनकी अलग तमिल पहचान का भाव उसके बाद भी छाया रहा। 1960 के दशक में पृथक्तावादी प्रवृतियों ने राज्यों की स्वायत्तता हेतु माँग का मार्ग प्रशस्त किया। तमिलनाडु की द्रविड़ियन पार्टियाँ उन ताकतों की महत्त्वपूर्ण सहियोगी दल बन गईं जो देश में स्वायत्तता की माँग करती थीं।

द्रविड़ियन संस्कृति पर प्रहार ने तमिलनाडु में हिन्दू सम्प्रदाय की ही तर्ज पर नृजातीयता की बढ़वार को रोक दिया। दक्षिण भारत के अन्य राज्यों से भिन्न, तमिलनाडु में हिन्दू सम्प्रदाय को चुनौती का आधार सैद्धान्तिक रहा था।

26.6.3 पंजाब

पंजाब में नृजातीयता मुख्यत: ऐसे स्वायत्तता आन्दोलन तथा विप्लव के रूप में प्रकट हुई जिनका आधार क्षेत्रीय, धार्मिक तथा आर्थिक था। यदा-कदा इसने हिन्दुओं व सिखों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष का रूप भी लिया था। पंजाब में 1950 व 1960 के दशकों के दौरान स्वायत्तता आन्दोलन देखा गया था, जिनकी अगुवाई अकाली दल द्वारा की गई थी। अकाली नेतृत्व का तर्क था कि पंजाब के वे क्षेत्र जहाँ मातृ-भाषा पंजाबी वाले तथा सिख धर्म मानने वाले लोग रहते हैं, को उनको अपना स्वायत्त प्रान्त दे दिया जाए। बलदेव राज नायर के अनुसार, अकाली नेतृत्व ने समर्थन जुटाने के लिए त्रि-फलक रणनीति तैयार की थी – सांवैधानिक, घुसपैठ और आन्दोलनात्मक। प्रथम में ज्ञापन, रैलियाँ, मार्च, आदि जैसे सांवैधानिक तरीके शामिल थे; दूसरे ने बड़ी संख्या में घुसने और पंजाबी सूबे के पक्ष में भीतर से ही उसके निर्णयों को प्रभावित करने की अनुमति दी; और तीसरे में शामिल थे – तीर्थों को कूच करना, बल-प्रयोग, धमकी देना। आन्दोलनात्मक रणनीति ने अक्सर हिंसा को उकसाया। दरअसल अकाली दल के भीतर दो गुट थे – प्रथम, सामाजिक-आर्थिक स्पष्टीकरण देते संत फतहसिंह के प्रतिनिधित्व वाला; और दूसरा, मास्टर तारा सिंह के प्रतिनिधित्व वाला, जिन्होंने धार्मिक आधार पर पंजाबी सूबे हेतु माँग को जायज़ ठहराया – सिखों के एक स्वायत्त प्रांत के लिए।

1980 का दशकोपरांत काल पंजाब में स्वायत्त आन्दोलन को अगले चरण के रूप में जाना गया। पहले वाले से भिन्न, यह भारतीय राज्य की संप्रभुता को चुनौती देते और सिख धर्म के अनुयायियों पर आधारित खालिस्तान (सिख गृहभूमि) की स्थापना हेतु विप्लव आन्दोलन में उभरा था। इसने पंजाब में हिन्दुओं व सिखों के बीच साम्प्रदायिक विभाजन को भी जन्म दिया। पंजाब में बड़े पैमाने पर हिंसा की पहचान वाले, जो असंख्य मौतों तथा सम्पत्ति की विशाल क्षति में परिणित हुआ, इस आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्र-राज्य की इमारत को ललकारा। इस चरण में अकाली आन्दोलन का प्रसंग 1950 व 1960 के दशकों से भिन्न था। पंजाब में कांग्रेस के पतन और अकाली दल के एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरने के बाद 1960 के दशकांत से राज्य की राजनीति में रुझान बदल गए। देश की राजनीति, और कांग्रेस संगठन पर अपने नियंत्रण को कायम रखने के प्रयास में इन्दिरा गाँधी ने कांग्रेस का वैयक्तिकरण कर दिया और राज्यों की राजनीति में सीधे हस्तक्षेप किया, खासकर कांग्रेस-शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों के चुनाव में। यह बात राज्यों के अधिक अनुकूल होने के लिए केन्द्र-राज्य संबंधों मे परिवर्तन हेतु बढ़ रही माँग के साथ मेल खा गई। 1970 के दशक में पंजाब में कांग्रेस के प्रभुत्व को अकाली दल द्वारा दी गई चुनौती ने इन्दिरा गाँधी को सिख वोटों की लामबंदी के लिए सिख धार्मिक प्रतीकों के प्रयोग हेतु उकसाया। 1980 के पंजाब विधानसभा चुनाव में, उन्होंने सिखों का समर्थन पाने के लिए एक सिख धार्मिक नेता, संत जरनैल भिण्डराँवाले की मदद ली। इसके दो परिणाम हुए। एक ओर इसने धार्मिक नेताओं, खासकर भिण्डराँवाले को राजनीतिक नेतृत्व से स्वतंत्र रह कर काम करने और युयुत्सु बन जाने के लिए प्रोत्साहित किया। विदेशी ताकतों के समर्थन से वह एक बड़ी संख्या में युवाओं को जुटाने और एक पृथक् सिख गृहभूमि – खालिस्तान, की माँग करने में सक्षम था। खालिस्तानी आन्दोलन के दौरान व्यापक हिंसा हुई, जो इन्दिरा गाँधी की हत्या में परिणत हुई, जोकि 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' के उपरांत प्रक्रियाओं की एक शृंखला की एक कड़ी थी खालिस्तान आन्दोलन ने भारत राष्ट्र-राज्य को विधिसंगति और संप्रभुता को चुनौती दी थी। दूसरी ओर, सिख धर्म के प्रयोग और हिन्दुओं पर सिख आचार-संहिता थोपे जाने से पंजाब में सिखों और हिन्दुओं के बीच साम्प्रदायिक विभाजन पैदा हुआ। इसकी पराकाष्ठा यदा-कदा साम्प्रदायिक उपद्रवों व संघर्षों में दिखाई दी।

जिनको सामान्यतया पंजाब समस्या "पंजाब क्राइसिस" के नाम से जाना गया। 1970 और 1980 के दशकों के दौरान पंजाब में उल्लेखनीय विकास – सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक हुए। पंजाब समस्या के दो प्रकार के स्पष्टीकरण हैं। प्रथम स्पष्टीकरण अर्थशास्त्रियों तथा मार्क्सवादी विद्वानों द्वारा दिया जाता है। इस ढाँचे के मुख्य प्रतिनिधि हैं – सुच्चा सिंह गिल, के.सी. सिंघल, हरीश कुमार पुरी, जॉयसी पैरीग्रिउ, एम.एस. धामी, जावेद आलम और गुरुहरपाल सिंह। उनका तर्क है कि पंजाब समस्या लोगों की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं

में निहित है, खासकर हरित क्रांति के आलोक में; बढ़ती बेरोज़गारी के साथ कृषि की लागत वहन कर पाने में अक्षम, उपभोक्तावाद और आधुनिक मूल्यों के प्रभाव द्वारा पैदा सिख पहचान के संकट ने पंजाब में युद्धप्रियता के उदय हेतु एक विदग्ध आधार तैयार किया। वे विद्वान् जिन्होंने राजनीतिक स्पष्टीकरण दिया, उदाहरणार्थ पॉल आर. ब्रास, सामाजिक-आर्थिक स्पष्टीकरण को अपर्याप्त और न्यूनतावादी कहकर निन्दा करते हैं। दूसरी ओर उनका तर्क है कि पंजाब समस्या राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म तथा लोगों की समस्याओं के राजनीतिक छलयोजन का परिणाम रही है। ब्रास के अनुसार, वस्तुत: यह केन्द्र-राज्य संबंधों को बदलने के प्रसंग में इंदिरा गाँधी द्वारा भिण्डराँवाले की सेवाओं का छलयोजन ही था जिसने पंजाब में युयुत्सा को जन्म दिया।

26.6.4 जम्मू व कश्मीर

जम्मू-कश्मीर में स्वायत्तता आन्दोलन तथा विद्रोह (Insurgency) भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक कारकों से जुड़ा है। इसके राज्यारोहण से पूर्व राज्य में राजनीतिक नेतृत्व राष्ट्र-राज्य से उसके संबंध के मुद्दे पर विभाज़ित हो चुका था। जबकि राजा हरि सिंह, जो इसे एक स्वतंत्र राज्य के रूप में बनाए रखना चाहते थे, ने जम्मू-कश्मीर भारत को सौंपे जाने का विरोध करते थे, राज्य के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला इसे भारत में विलय करना चाहते थे। परन्तु जब यह राज्य भारत को सौंप दिया गया और शेख अब्दुल्ला राज्य के प्रधानमन्त्री बन गए, उन्होंने जम्मू-कश्मीर भारत को सौंपे जाने का मुद्दा उछालना शुरू कर दिया। उन्होंने 'प्लेबिसाइट फ्रंट' बनाया, जिसने केन्द्रीय सरकार को उसे पदच्युत करने तथा उन्हें 1953 से 1964 तक कारावास दे देने के लिए मजबूर किया। जम्मू-कश्मीर राज्य के भीतर दो क्षेत्रों से स्वायत्तता हेतु माँगें उठती रहीं हैं – जम्मू तथा लद्दाख, जहाँ ग़ैर-कश्मीरी कुल जनसंख्या का अच्छा-खासा भाग है। जम्मू-कश्मीर राज्य केन्द्र-राज्य संबंधों में बदलाव के अभिप्राय से क्षेत्रीय स्वायत्ता हेतु अन्य राज्यों में भी शामिल हो गया है। राज्य ने 1980 के दशक से लेकर गत दशकों तक विद्रोह को झेला है, जो राज्य में बड़े पैमाने पर हिंसा और साम्प्रदायिक विभाजन में परिणत हुआ। विद्रोह में पाकिस्तान की लिप्तता ने भारतीय राष्ट्र-राज्य को चुनौती दी हुई है। बलराज पुरी के अनुसार, जम्मू-कश्मीर में विद्रोह के लिए कारण हैं : केन्द्र सरकार का रवैया, राज्य में विपक्ष का अभाव, राज्य व केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा लोकतंत्र का विपथन, बढ़ती बेरोजगारी व लोगों की समस्याएँ, तथा शीत युद्ध व पाकिस्तान। उनके विचार से, राज्य में विद्रोह के कारण यद्यपि 1947 से ही विद्मान रहे हैं, इनका हाल का चरण जो 1986 में शुरू हुआ, पूर्व काल से सम्बद्ध नहीं है। केन्द्रीय सरकार ने 1947 में राज्य को अनुग्रहीत स्वायत्तता को कम कर दिया; संविधान संशोधन के माध्यम से उसने जम्मू-कश्मीर राज्य हेतु प्रयोज्य अनुच्छेद 356 व 357 बनाए। केन्द्र सरकार के साथ-साथ शेख अब्दुल्ला ने भी राज्य में विपक्ष नहीं पनपने दिया; राष्ट्रवाद के नाम पर लोकतंत्र को पटरी से उतार दिया गया; राज्य के मामलों में केन्द्र सरकार का हस्तक्षेप तथा राज्य सरकार का गैर-सैद्धान्तिक दृष्टिकोण। इन कारकों ने जम्मू-कश्मीर के लोगों के बीच असहाय स्थिति को जन्म दिया। यह बात बढ़ती बेरोज़गारी और लोगों की गिरती माली हालत के साथ मेल खा गई। इसी वक्त राज्य के भीतर जम्मू व लद्दाख के क्षेत्रों को स्वायत्तता दिए जाने से इंकार ने राज्य के भीतर क्षेत्रीय विभाजन पैदा कर दिया। लोकतान्त्रिक विपक्षी राजनीतिक दलों के अभाव द्वारा रचित यह रिक्त स्थान साम्प्रदायिक व रूढ़िवादी ताकतों द्वारा भरा गया। पाकिस्तान द्वारा समर्थित व दुरुत्साहित ये शक्तियाँ राज्य में विद्रोह का स्रोत बन गईं। कोई ऐसा हल ढूंढने में सरकार की विफलता जो जम्मू-कश्मीर के लोगों को राष्ट्र-राज्य से भावात्मक रूप से जोड़ सके, और इसकी बजाय सशक्त सेनाओं पर भरोसे ने समस्या को और भी गंभीर बना दिया है।

26.7 सारांश

कुल मिलाकर, नृजातीयता उन चुनौतियों में से एक है जो भारतीय राष्ट्र-राज्य के सामने हैं। यह स्वनिर्धारण आन्दोलनों के रूप में व्यक्त होती है – स्वायत्तता आन्दोलन, पृथक्तावादी आन्दोलन, विप्लव तथा नृजातीय

संघर्ष का उपद्रव। राष्ट्र-राज्य बनाने के प्रयास में, स्वतंत्रता उपरांत प्रथम दो दशकों में देश में राष्ट्रीय नेतृत्व यह मानता था कि देश का सम्पूर्ण विकास/आधुनिकीकरण नृजातीय चुनौती की अधीनता में ही परिणत होगा। इसने राष्ट्र-राज्य निर्माण हेतु नेहरूवियन/महालैनोबिस मॉडल का प्रादुर्भाव किया। परन्तु स्वायत्ता के कुछ वर्षों में ही, देश भाषायी आन्दोलनों व साम्प्रदायिक हिंसा के गहरे गर्त में समा गया। देश के विभिन्न भागों में लघुतर राष्ट्रवादियों द्वारा राष्ट्र-राज्य निर्माण के मॉडल की सत्यता पर संदेह प्रकट किया गया जिसमें शामिल थे – उत्तर पूर्व में नागा व मिज़ो, तमिलनाडु में द्रविड़ियन आन्दोलन, जम्मू व कश्मीर तथा पंजाब। देश में नृजातीय संघर्षों की संख्या बढ़ना जारी है।

राष्ट्र-राज्य के विरुद्ध नृजातीय चुनौती के अधिक उग्र होने हेतु स्पष्टीकरण के मुख्यत: तीन सेट बातें हैं – आदिम, यन्त्रवादी तथा आदिम व यन्त्रवादी का एक संमिश्रण। इनमें यंत्रवादी स्पष्टीकरण सर्वाधिक प्रबल हैं। कुछ विद्वानों का तर्क है कि राष्ट्र-राज्य निर्माण मॉडल लघुतर राष्ट्रवादियों को अधीन करने हेतु देश में प्रबल नेतृत्व का एक प्रयास है। इस स्थिति से उबरने के लिए नीतियों में "राष्ट्र-राज्य निर्माण" से पलटकर "असली राज्यसंघ निर्माण" की ओर रुख करना होगा।

26.8 अभ्यास प्रश्न

1) नृजातीयता क्या है? इसके अध्ययन हेतु दृष्टिकोणों पर चर्चा करें।

2) नृजातीयता व्यक्त करने के रूपों की पहचान करें। पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर में राष्ट्र-राज्य को नृजातीयता की चुनौती की तुलना करें।

3) उत्तर-पूर्वी भारत के प्रसंग में नृजातीयता की जाँच करें।

4) तमिलनाडु का उदाहरण देते हुए राष्ट्र-राज्य को नृजातीय चुनौती पर एक टिप्पणी लिखें।